वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 351

दिगम्बर जैन परम्परा में प्रचलित

भ्रान्तियों का निराकरण

–लेखिका –

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

शरदपूर्णिमा महोत्सव, 11 अक्टूबर 2011 को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में
पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा घोषित
''प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर वर्ष'' के अन्तर्गत प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.-250404
फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org
E-mail : jambudweeptirth@gmail.com

प्रथम संस्करण वीर नि. सं. 2538, द्वि. भाद्रपद शुक्ला 14 मूल्य
2000 प्रतियाँ दशलक्षण महापर्व-29 सितम्बर 2012 स्वाध्याय

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

–: निर्देशक एवं सम्पादक :–

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

–: प्रबंध सम्पादक :–

बाल ब्र. जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

दिगम्बर जैन परम्परा में प्रचलित
भ्रान्तियों का निराकरण

णमो अरहंताणं, णमो सिदाणं, णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

(1) प्रश्न—ब्राह्मी-सुन्दरी ने दीक्षा क्यों ली ?

उत्तर—वैराग्य भावना से दीक्षा ली है। तीर्थंकरों के कन्या होना काल दोष या अभिशाप नहीं है। चक्रवर्ती के भी कन्याएँ होती हैं। विदेह क्षेत्र के त्रिभुवनानंद चक्रवर्ती की कन्या अनंगशरा थी, जो तीन हजार वर्ष तक निर्जन वन में घोर तपश्चरण करके उसके प्रभाव से स्वर्ग में देवी होकर पुनः विशल्या हुई थी, जिसके आने मात्र से लक्ष्मण की शक्ति–अमोघशक्ति निकल गई थी।

'श्रीमती' राजा वज्रजंघ की पत्नी भी चक्रवर्ती की कन्या थी...।

ये चक्रवर्ती केवल माता-पिता के सिवाय अपने सास-श्वसुर को भी नमस्कार नहीं करते हैं तभी छहखंड के स्वामी होते हैं। अर्धचक्री नारायण भी अपने सास-श्वसुर को नमस्कार नहीं करते हैं।

चक्रवर्ती के 96 हजार एवं अर्धचक्री के 16 हजार, बलभद्र के 8 हजार रानियाँ होती हैं। ये शलाका पुरुष भी अपने माता-पिता के सिवाय या बड़े भ्राता के सिवाय किसी को नमस्कार नहीं करते हैं।

दामाद को नमस्कार की परम्परा अधिकतम किसी प्रांत में भी नहीं है। आज भी दामाद अपने सास-श्वसुर के पैर छूते हैं, नमस्कार करते हैं, न कि सास-श्वसुर उन दामाद के।

यह किंवदन्ती ''ब्राह्मी-सुन्दरी'' के बारे में कि भगवान को उनके पति को नमस्कार करना पड़ता, इसलिए दोनों कन्याओं ने विवाह नहीं किया। गलत है।

यह किसी भी दिगम्बर जैन ग्रंथों में नहीं लिखी है।

भगवान शांतिनाथ, कुंथुनाथ व अरनाथ चक्रवर्ती थे, इनके 96 हजार रानियों में किसी के कन्याएँ न हुईं हों, ऐसा असंभव है।

(2) प्रश्न—क्या बाहुबली भगवान के शल्य थी ?

उत्तर—शल्य नहीं थी, क्योंकि शल्य सहित मुनि के मनःपर्ययज्ञान व ऋद्धियाँ नहीं हो सकती हैं। बाहुबली स्वामी ध्यान में लीन थे, वे भावलिंगी मुनि थे, आदिपुराण भाग-2, पृ. 213 से लेकर पृ.217 तक उनके ऋद्धियों का वर्णन है।

हाँ, उनके किंचित् विकल्प कभी-कभी हो जाता था कि मेरे भाई को मुझसे क्लेश हो गया अतः यह सौहार्द भाव मन में आ जाता था, यही कारण है उनके निर्विकल्परूप शुक्लध्यान नहीं हो पाया था। श्री भरत के आते ही तथा निर्विकल्प ध्यान होते ही उन्हें केवलज्ञान प्रगट हो गया था।

श्लोक– **संक्लिष्टो भरताधीशः सोऽस्मत्त इति यत्किल।**
हृदस्य हार्दं तेनासीत् तत्पूजाऽपेक्षि केवलम्।।186।।

अर्थ—वह भरतेश्वर मुझसे संक्लेश को प्राप्त हुआ है अर्थात् मेरे निमित्त से उसे दुख पहुँचा है यह विचार बाहुबली के हृदय में विद्यमान रहता था, इसलिए केवलज्ञान ने भरत की पूजा की अपेक्षा की थी। अर्थात् उनके हृदय में भाई भरत के प्रति सौहार्द–स्नेहभाव आ जाता था।

(3) प्रश्न—भगवान महावीर ने 42 चातुर्मास किये हैं क्या ?

उत्तर—तीर्थंकर मुनि 'जिन' हैं। जिनकल्पी मुनि के भी वर्षायोग का नियम नहीं है। तीर्थंकर भगवन्तों के चातुर्मास का वर्णन किसी भी दिगम्बर जैन ग्रंथों में नहीं है। 12 वर्ष तक भगवान महावीर मुनि रहे हैं। पुनः केवलज्ञान होने के बाद 30 वर्ष तक केवली रहे हैं। केवली भगवान का चातुर्मास कहना केवली का अवर्णवाद है। यह श्वेताम्बर ग्रंथों की मान्यता है।

(4) प्रश्न—भगवान महावीर को मुनि अवस्था में कितनी बार उपसर्ग हुए ?

उत्तर—मात्र एक बार उज्जयिनी के अतिमुक्तक वन में रुद्र द्वारा उपसर्ग हुआ है न कि अनेक बार। अनेकबार उपसर्ग मानना और सर्प द्वारा उसे काटे जाने पर दूध बहना, उसे संबोधित करना आदि मान्यताएँ श्वेताम्बर ग्रंथों के

आधार से हैं। दिगम्बर जैन ग्रंथों में तीर्थंकर भगवान दीक्षा के बाद केवलज्ञान होने तक मौन ही रहते हैं। किसी को उपदेश नहीं देते हैं न शिष्य ही बनाते हैं। पागल हाथी को वश में करना, सर्प द्वारा डसे जाने पर दूध निकलना आदि मान्यताएँ श्वेताम्बर की हैं।

(5) प्रश्न—चंदनबाला बाजार में बेची गई थी क्या ?

उत्तर—नहीं, चंदनबाला को विद्याधर ने हरा था, पुनः वन में छोड़ दिया था। वहाँ पर भील उसे अपने घर ले गया पुनः भील ने अपने मित्र को दिया, उसने सेठ के घर पहुँचा दिया था। बाजार में बेचने का प्रकरण दिगम्बर जैन ग्रंथों में नहीं है। यह भी श्वेताम्बर ग्रंथों में है।

भगवान महावीर को पड़गाहन करते समय उसके पुण्य से व शील के प्रभाव से उसकी बेड़ियाँ झड़ गई थीं। कोदों का भात खीर बन गया था आदि.....। दिगम्बर जैन ग्रंथों का स्वाध्याय करके ही उसके आधार से बोलना चाहिए।

किंवदन्तियाँ

(6) प्रश्न—तीर्थंकर जन्म से ही भगवान नहीं होते हैं, प्रत्युत केवलज्ञान प्राप्त करने के बाद भगवान होते हैं ?

उत्तर—ऐसा नहीं है, उनके गर्भ में आने के छह माह पूर्व से रत्नवृष्टि आदि होना, ऐसी विशेषताएँ पाई जाती हैं अतः वे जन्म से ही भगवान कहे जाते हैं। महापुराण में श्री आचार्यदेव ने स्थल-स्थल पर उन्हें जन्म से ही मेरू पर अभिषेक के समय व राज्यावस्था में भी भगवान कहा है।

देखें महापुराण भाग-1 में, जगह-जगह 'भगवान' शब्द का प्रयोग श्री आचार्य जिनसेन स्वामी ने किया है।

आजकल कुछ प्रतिष्ठाचार्य या साधुवर्ग भी प्रतिष्ठाओं में जन्म से आदिकुमार, पार्श्वकुमार आदि कहने लगे हैं। व दीक्षा के बाद आदिसागर या पार्श्वसागर, शांतिसागर ऐसे नामकरण करने लगे हैं, सो सर्वथा अनुचित है। क्योंकि इन्द्र द्वारा रखे गये 'आदिनाथ', 'शांतिनाथ' आदि नाम नहीं बदलने चाहिए। दीक्षा के बाद भी श्री शांतिनाथ महामुनि आदि कहना चाहिए 'नाथ'

या 'देव' शब्द नहीं हटाना चाहिए, क्योंकि वे जन्म से ही तीनों लोकों के 'नाथ' हैं। इन्द्रों द्वारा वंद्य हैं।

(7) प्रश्न—क्या भगवान ऋषभदेव के समय प्रजा के लोग आदिवासी भील जैसे वेष धारण करते थे ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि उस समय भोगभूमि व्यवस्था थी, कल्पवृक्षों से फल मिलना बंद हो गया था, अतः प्रजा के लोग "क्या भोजन करें ? कैसे रहें ? कैसी आजीविका करें ?" इत्यादि समस्याओं को लेकर आये थे। अतः वे सभी शिष्ट तथा अच्छे वस्त्र, आभूषणों से सहित थे। इसलिए प्रतिष्ठा में श्री नाभिराय के समक्ष या श्री ऋषभदेव के पास आदिवासी भीलों जैसे वेष बनवाकर लोगों को नहीं लाना चाहिए।

(8) प्रश्न—यज्ञोपवीत तो ब्राह्मणों के लिए है, यह जैन का चिन्ह नहीं है ?

उत्तर—ऐसा नहीं है, क्योंकि जैन ग्रंथों के अनुसार आठ वर्ष की उम्र में यज्ञोपवीत संस्कार होना ही चाहिए। बिना यज्ञोपवीत धारण किए पूजन व दान करने का विधान नहीं है। यह रत्नत्रय का सूचक है और जैनियों का–श्रावकों का चिन्ह है।

(9) प्रश्न—अनेकांत की व्याख्या क्या है ?

उत्तर—प्रत्येक वस्तु में अनंत धर्म हैं, उनमें से किसी एक धर्म को कहते समय नय की अपेक्षा रखना व उसके विरोधी धर्म को भी स्वीकार करना अनेकांत है। जैसे जीव नित्य है, द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से। जीव अनित्य है, पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा से जो किसी का पुत्र है, व पिता भी है। अपने पुत्र का पिता है व पिता का पुत्र है आदि।

(10) प्रश्न—संसार में सभी के कथन को या मत को किसी भी अपेक्षा स्वीकार करना अनेकांत है क्या ?

उत्तर—नहीं, जैसे अनेक विषकण मिलकर अमृत नहीं बनते हैं, वैसे ही सभी के कथन या मत मिलकर अनेकांत नहीं बनता है।

जैसे–कथंचित् रात्रिभोजन धर्म है कथंचित् रात्रिभोजन अधर्म है, ऐसी अनेकांत की व्याख्या नहीं है। दूसरा उदाहरण–जैसे–कथंचित् दिगम्बर मुद्रा

से ही मोक्ष है, कथंचित् वस्त्रधारी या श्वेताम्बर अथवा अन्यलिंगी साधु वेष से मोक्ष है, ऐसा अनेकांत जैनशासन में मान्य नहीं है।

इसीलिए राजवार्तिक ग्रंथराज में श्री अकलंकदेव ने कहा है कि – एकांत भी दो प्रकार का है सम्यक् – एकांत व मिथ्याएकांत। ऐसे ही अनेकांत भी दो प्रकार का है – सम्यक् अनेकांत और मिथ्या अनेकांत। दिगम्बर मुद्रा से ही मोक्ष है यह सम्यक् एकांत है। रात्रिभोजन त्याग ही धर्म है यह सम्यक् एकांत है इत्यादि।

आज कोई बलि में धर्म मानते हैं, कोई मांसाहार व मदिरापान में धर्म मानते हैं। ये सभी मत जैनशासन में मान्य नहीं है। इनमें अनेकांत नहीं लगेगा। कोई सम्प्रदाय दिन में भोजन त्याग कर रात्रि में भोजन करके व्रत खोलते हैं। इसमें भी अनेकांत नहीं लगेगा।

(11) प्रश्न – द्रौपदी के क्या पाँच पति थे ?

उत्तर – जैन ग्रंथों के अनुसार – पांडवपुराण, हरिवंशपुराण आदि ग्रंथों के अनुसार द्रौपदी के स्वयंवर में अर्जुन ने चन्द्रवेध किया था, तब द्रौपदी ने अर्जुन के गले में वरमाला डाली थी, उस समय हवा के झोंके से माला टूट गई व कुछ पुष्प इधर-उधर बैठे हुए पांडवों पर गिर पड़े, तभी किसी एक व्यक्ति ने बाहर जाकर कहा कि –

''द्रौपदी ने पाँच पति वरे हैं।'' यह किंवदन्ती फैल गई। वास्तव में द्रौपदी के लिए युधिष्ठिर और भीम ज्येष्ठ – पिता तुल्य थे तथा नकुल व सहदेव देवर – पुत्र तुल्य थे। ये भी द्रौपदी को पुत्री व माता के समान समझते थे। ऐसा जैन महाभारत में लिखा है।

(12) प्रश्न – क्या सती सीता पृथ्वी में समा गईं ?

उत्तर – जैन रामायण – पद्मपुराण, पउमचरिउ आदि ग्रंथों में लिखा है कि महाराजा दशरथ की माता का नाम 'पृथ्वीमती' था। वे दीक्षा लेकर आर्यिका – जैन साध्वी बनी थीं। सीता महासती अग्निपरीक्षा के बाद केशलोंच करके आर्यिका माता श्री पृथिवीमती साध्वी के पास जाकर आर्यिका दीक्षा लेकर साध्वी बन गई थीं तथा घोरातिघोर तपश्चरण करके स्त्रीलिंग से छूटकर सोलहवें स्वर्ग में प्रतीन्द्र हुई हैं।

प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती
श्री शांतिसागर जी महाराज की परम्परा

(1) संघ में प्रतिमा रखना।

(2) प्रतिदिन पंचामृत अभिषेक देखना।

(3) बिना भगवान के दर्शन के आहार को नहीं उठना।

(4) यज्ञोपवीत के बिना अभिषेक, पूजा नहीं कराना और न आहार लेना।

(5) स्त्रियों द्वारा अभिषेक कराना।

(6) बीसपंथ पूर्णतया पालना – क्षेत्रपाल, शासन देव-देवी की मान्यता का विरोध नहीं करना।

(7) अंतर्जातीय-विजातीय विवाह वाले से अभिषेक-अनुष्ठान नहीं कराना तथा आहार नहीं लेना।

(8) अष्टम प्रतिमाधारी से लेकर क्षुल्लक, ऐलक तक को गेरुवे वस्त्र देना।

(9) आर्यिकाओं की नवधाभक्ति कराना।

(10) क्षुल्लक-क्षुल्लिकाओं के अर्घ्य चढ़वाना।

(11) शूद्रजल त्याग कराना (शुद्धजल लेने का नियम कराना), उनसे आहार लेना

(12) द्विदल कच्चे दूध व कच्चे दूध के दही से ही बनता है। अतः गर्म शुद्ध दूध के दही या मट्ठे से बनी बेसन की कढ़ी आदि आहार में लेने का विरोध नहीं करना अथवा द्विदल मानकर उसका त्याग नहीं करना, न कराना।

(13) अष्टमी-चतुर्दशी को हरी का त्याग नहीं करना और न कराना।

(14) संघस्थ ब्रह्मचारी व ब्रह्मचारिणी को भी बिना देवदर्शन व बिना अभिषेक किये भोजन नहीं करना।

(15) संघ में ब्रह्मचारी अथवा ब्रह्मचारिणी को चौका करने का विरोध नहीं करना।